श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीआनन्दभाष्यकाराय नमोनमः

जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्य प्रणीता

श्रीगीतार्थसुधा

उत्पत्त्यादिविधायकं च जगतो हेतुं परञ्चेश्वरं
जीवाजीवशरीरिणं सुशरणं भक्त्यैव सायुज्यदम्।
निर्दोषंसुगुणाकरंनिखिलविद्वेदान्तगम्यं विभुं
गीतोक्तंवरदंनतोऽस्मिकरुणाम्भोधिंप्रभुंराघवम् १।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वर

स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीतान्वयदीपिका

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम्। रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

जगतः उत्पत्ति आदि विधायकम् हेतुम् च परम् ईश्वरम् जीव अजीव शरीरिणम् सुशरणम् भक्त्या एव सायुज्यदम् निर्दोषम् सुगुणाकरम् निखिलवित् वेदान्तगम्यम् विभुम् गीतोक्तम् वरदम् करुणाम्भोधिम् प्रभुम् राघवम् अहम् नतः अस्मि॥१॥

सम्पूर्ण वेद उपनिषद् धर्मशास्त्र स्मृति आदि का साररूप गीता शास्त्र है। जो मुक्ति का पथप्रदर्शक प्रस्थानत्रय के नाम से लोक में प्रसिद्ध ब्रह्मसूत्र १ उपनिषद् २ गीता ३ में से एक है। सर्वशास्त्रों का सार होने से अति गम्भीर है जिसके उपर आचार्यों तथा मनिषियों के अनेक टीका भाष्य या टिप्पणी आदि हैं। आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराज का गीता का आनन्दभाष्य विद्वज्जगत में अति प्रतिष्ठा प्राप्त भाष्य रत्न हैं। उसके अति प्रसन्न गम्भीर तथा विशदप्राय होने से शीघ्र गीता सारार्थ के जानने की इच्छावाले जनों की असामञ्जस्स्य को ध्यान में रखकर आचार्य प्रवर के ही प्रशिष्य जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यजी के पट्टशिष्य जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी ने आचार्य श्रीकी आज्ञा प्राप्त कर के अति संक्षेप में सम्पूर्ण गीताशास्त्र के सार अर्थ को बोध कराने के लिये श्रीगीतार्थसुधा नाम का अन्वर्थ नाम—यथा नाम तथा गुण वाला पद्यात्मक दिव्य प्रबन्ध लिखा जिसका गीताशास्त्र प्रतिपाद्य सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का नमस्कारात्मक प्रथम श्लोक 'उत्पत्यादिविधायकम्' इत्यादि है।

जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय करने वाले संसार के अभिन्ननिमित्त तथा उपादान कारण "राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः। राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्।" इत्यादिरूप

नत्वा गुरुं तथाऽऽनन्दभाष्यकारं जगद्गुरुम् ।
करोम्यनुभवानन्दः सुधां मृत्युविनाशिनीम् ॥२॥
कर्मज्ञानप्रसाध्याभगवतिपरमाभक्तिरेकोऽभ्युपायः
श्रेष्ठोमोक्षस्यवाच्योमतमितिविदितंज्ञापयिष्यन्मुकुन्दः ।

आनन्दभाष्यकारम् जगद्गुरुम् श्रीरामानन्दाचार्यम् नत्वा तथा गुरुम् जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यम् च नत्वा अहम् अनुभवानन्दाचार्यः मृत्युविनाशिनीम् सुधाम् करोमि ॥२॥

कर्मज्ञानप्रसाध्या भगवति परमा भक्तिः मोक्षस्य एकः श्रेष्ठः अभ्युपाय वाच्य इति विदितम् मतम् ज्ञापयिष्यन् मुकुन्दः धर्माधर्मप्रसंगात् विकलितमनसम् पार्थम् से श्रुति द्वारा प्रतिपादित परात्पर पर ब्रह्म श्रीरामजी जो समस्त चेतन तथा अचेतन वर्ग के शरीरी हैं तथा शरण में आये हुये जीवमात्र को अभय प्रदान करनेवाले हैं जो केवल भक्ति या प्रपत्ति से ही सायुज्य मुक्ति देनेवाले हैं जो सब प्रकार के हेय दोषों से रहित हैं तथा अनन्त कल्याण गुणों के समुद्र हैं और जो सर्वज्ञ हैं जो वेदान्त के द्वारा ही जाने जाते हैं तथा सर्वव्यापक और गीता शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित-गीता के परमलक्ष्य भूत तत्त्व सभी शरणापन्न जनों को इच्छित वरदान देनेवाले और करुणा आदि अनन्त गुणों के महासमुद्र कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं यानी सभी कर्म करने में सर्वसमर्थ प्रभु रघुकुल में उत्पन्न संसार के भार को हरण कर स्वधर्मस्थापन के लिये स्वदिव्यातिदिव्य देह से पूर्णावताररूप से अवतरित सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी को मैं श्रीअनुभवानन्दाचार्य सादर नमस्कार करता हूं ॥१॥

परमाराधनीय प्रातःस्मरणीय श्रीसम्प्रदाय के प्रधान आचार्य प्रस्थानत्रय-गीता उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्रों पर आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराज मेरे दादागुरुजी को सादर दण्डवत् नमस्कार-प्रणाम कर तथा प्रातःस्मरणीय मेरे गुरुदेव जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यजी महाराज को सादर नमस्कार-दण्डवत् प्रणाम करके मैं श्रीअनुभवानन्दाचार्य मृत्यु का विनाश कर देनेवाली सुधा गीता आनन्दभाष्य का अतिसंक्षिप्तसार गीतार्थसुधा को बनाता हूं अर्थात् प्रति अध्याय का एक एक श्लोक के रूप में संक्षिप्तसुधासार का निर्माण करता हूं ॥२॥

वेद स्मृति आदि शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित सत्कर्म तथा ज्ञानसे प्रसाध्य—प्राप्त की जा सकनेवाली सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की परम उत्कृष्ट भक्ति शरणागति ही एकमात्र सायुज्य मोक्ष का श्रेष्ठ सर्वोत्तम उपाय साधन है। इस सर्वशास्त्रों से निरूपित प्रसिद्धमत को ज्ञापित करते हुए

धर्माधर्मप्रसंगाद्विकलितमनसं पार्थमुद्दिश्य गीता
मोहोपोद्घातरूपसुदृढमभिहितस्तत्रचाद्यप्रपाठः ।३।।

प्रोक्तौदेहात्मबुद्ध्या स्वजनममतया बालिशे मोहशोकौ
क्षीयेते तौ च बोधात् फलमतिरहितात् कर्मणः सोऽपिसिद्ध्येत्।
तस्माद्भक्तिः परेशे नियमितमनसा प्राप्यते सत्त्ववृद्ध्या
तस्याःशान्तिर्ध्रुवात्माफलमिदमशिषत् कृष्णचन्द्रोद्वितीये ।।४।।

उद्दिश्य गीताम् आह तत्र चायम् सुदृढम् अभिहितः उपोद्घात रूपः आद्यः प्रपाठः अस्ति ।।३।।

देहात्मबुद्ध्या स्वजनममतया प्रोक्तौ मोहशोकौ बालिशेस्तः तौ च बोधात् क्षीयेते फलमतिरहितात् कर्मणः सः अपि सिध्येत् तस्मात् नियमितमनसा परेशे भक्तिः कार्या सा च सत्कर्मणा सत्त्ववृद्ध्या प्राप्यते तस्याः ध्रुवात्मा शान्तिः फलम् अस्ति इति इदम् कृष्णचन्द्रः द्वितीये अध्याये अशिषत् ।।४।।

बतलाए हुये श्रीकृष्णचन्द्रजी ने यह हमारा कर्तव्य धर्म है या अकर्तव्य अधर्म है यानी क्षत्रिय धर्मरक्षा के लिए अपने ही पिता प्रपितामह भाई पुत्र मामा जवाई आदि सम्बन्धियों को वध करना उचित है या अनुचित इस प्रकार के विकलित अधर्म या धर्म के निश्चय करने में असमर्थ चित्तवाले अर्जुन को उद्देश्य कर यानी प्रत्यक्षत मोह प्राप्त अर्जुन को निमित्त बनाकर जीवात्मा मात्र के लिये गीताशास्त्र का अठारह अध्याय में विभक्त सात सौ पैंतालीश श्लोकों में उपदेश दिया है। उसमें से सुबोधतया अच्छी तरह से कहा हुआ उपोद्घात रूप प्रारंभ के स्वरूप में वर्णित यह पहला अध्याय है ।।३।।

शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि आदि को ही आत्मा है ऐसा मानने वाली विवेकशून्य बुद्धि से सम्बद्ध स्वजनों में जो ये मेरे हैं इस प्रकार की ममता है वह बालिश व्यर्थ है आत्मा परमात्मा के ज्ञान रहित होने से अतथ्यपूर्ण है अतः एव अविवेकके द्वारा जायमान होने से व्यर्थ है। इस प्रकार के मोह का नाश जीवात्मा तथा परमात्मा के यथार्थ तत्त्व ज्ञान से होता है। ऐसे मोह तथा शोक को नाश करनेवाला तत्त्वज्ञान भी किसी भी प्रकार के फल की इच्छा रहित होकर वेद शास्त्र विहीत कर्म करने से प्राप्त हो जाता है। ऐसे तत्त्वज्ञान से सत्त्ववृद्धि हो जाने से मन नियमित अर्थात् स्थिर हो जाता है ऐसे मन से सर्वेश्वर श्रीरामजी की भक्ति प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार प्राप्त भक्ति का फल जीवात्माओं के लिये निश्च-

ज्ञानंकर्मेतिनिष्ठाद्वयमिहजगति प्राहुराम्नायविज्ञाः
कर्मारम्भं विहाय क्षणमपि भजते नैव कश्चित् प्रशान्तिम् ।
तस्मात् कर्मानुवृत्तिर्भगवति मनसा न्यस्य कर्माणि सम्यक्
कर्तव्यापुण्यपुंसागलितफलतृषा प्रोक्तमेतत् तृतीये ॥५॥
प्रोक्ता कर्मप्रसंगान्निजविभवकथा नित्यकर्माणि पश्चात्
कर्माकर्मस्वरूपंमतिसृतिमशिषत्कर्मभिःसम्प्रवृत्ताम्
यज्ञानांद्वादशानामनुकथनमितोज्ञानयज्ञस्यमौख्यं
ज्ञानाग्निर्नाशयत्येववृजिननिचयंतूर्येइत्यभ्यधत्त ॥६॥

इह जगति आम्नायविज्ञाः ज्ञानम् कर्म इति निष्ठाद्वयम् प्राहुः कश्चित् क्षणम् अपि कर्मारम्भम् विहाय प्रशान्तिम् नैव भजते तस्मात् पुण्यपुंसा गलितफलतृषा कर्माणि भगवति मनसा सम्यक् न्यस्य कर्मानुवृत्तिः कर्तव्या एतत् तृतीये प्रोक्तम् ॥५॥

कर्मप्रसङ्गात् भगवता निजविभवकथा प्रोक्ता पश्चात् नित्यकर्माणि प्रोक्तानि अनन्तरम् कर्मभिः सम्प्रवृत्ताम् कर्माकर्मस्वरूपम् मतिसृतिम् अशिषत् पश्चात् द्वादशानाम् यज्ञानाम् अनुकथनम् कृतम् इतः मौख्यम् ज्ञानयज्ञस्य सम्पादितम् यतः ज्ञानाग्निः वृजिननिचयम् नाशयति एव इति तूर्ये अभ्यधत्त ॥६॥

यात्मक अपरावर्त्य शान्ति यानी सायुज्यमुक्ति है इस तत्त्व को श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता के द्वितीय अध्याय में उपदेश किया है ॥४॥

सर्वदा परिवर्तनशील इस जगत् में वेदतत्त्वों को जानने वाले लोग ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा यों दो निष्ठाएं हैं ऐसा कहते हैं। कोई भी मानव कुछ न कुछ किये बिना एक क्षण भी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता है यानी सर्वदा कुछ न कुछ सोच विचार करता ही रहता है अतः बिना कर्म शान्त होकर एक क्षण भी नहीं रह सकता है। अतः पुण्यशाली पुरुष को किसी भी प्रकार के फल की इच्छा से रहित होकर वेदशास्त्र विहित समस्त कर्मों को भगवत् समर्पित करके कर्म की आवृत्ति यानी शास्त्र विहीत कर्मों को करते ही रहना चाहिये उनका त्याग नहीं क्योंकि वेद विहीत कर्मों के त्याग करने से प्रत्यवाय लगता है यह इस गीता के तृतीय अध्याय में कहा गया है ॥५॥

प्रसंगोपात्त कर्म की चर्चा में भगवान् ने अपने वैभव की कथा अर्जुन को कही उसके बाद नित्यकर्मों का यथार्थ रूप से प्रतिपादन किया गया हैं। अनन्तर कर्म तथा अकर्म के

ज्ञानाकारंविधत्तेश्रुतिविदितफलंकर्म सम्पच्यमानं
सन्यासस्तस्यनेष्टःसममतिरुदिताह्यात्मलब्धेरुपायः।
भोगानांदुःखदत्त्वाद्विरतिरतितरांपण्डितैस्तेभ्यइष्टा
स्वार्थानेतानवादीत् प्रणतसुरतरुःपञ्चमेवासुदेवः ॥७॥
योगाभ्यासस्यरीतिर्विरतिरतिशयासंसृतेर्मोहजाला
च्चातुर्विध्यंप्रतीतंसममतिरधिकोयोगिनांतत्रचोक्तः ।

श्रुतिविदितफलम् सम्पच्यमानम् कर्म ज्ञानाकारम् विधत्ते तस्य संन्यासः इष्टः न हि आत्म लब्धे उपायतरउदिता पण्डितैः तेभ्यः भागेभ्यः अतितराम् विरति इष्टा यतः भोगानाम् दुःखदत्त्वात् इति एतान् सु अर्थान् प्रणतसुरतरुः वासुदेवः पञ्चमे अवादीत् ॥७॥

योगाभ्यासस्य रीतिः मोहजालात् संसृतेः च अतिशया विरतिः योगिनाम्

विषय में विवेचन कर उनके स्वरूपों का प्रतिपादन किया गया है। उसके वाद कर्मों से संप्रवृत्त ज्ञान मार्ग का यथार्थ स्वरूप का निरूपण कर ज्ञान ही श्रेष्ठ है इसका सांगोपांग प्रतिपादन किया गया है। क्योंकि ज्ञान रूपी अग्नि ही वृजिननिचय यानी सर्व पापसमूहों को नियतरूप से नाश करती ही है इस प्रकार का उपदेश गीता के चौथे अध्याय में किया गया है ॥६॥

श्रुतियों में यानी वेद वेदांगादि में जिसका फल सर्वतोभाव से विदित है वह अच्छी तरह से परिपक्व कर्म ज्ञानाकार ज्ञान रूपता का धारण कर जाता है यानी वेदविहित कर्म ही ज्ञान रूप से परिणत हो जाता हैं वही मुक्ति का साधन वनता है अतः उस शास्त्र विहित कर्म का त्याग करना मुक्ति के इच्छा वालों को कैसे भी अच्छा नहीं है। आत्म प्राप्ति का उपाय सममति यानी साम्यबुद्धि ही शास्त्रों में समुपवर्णित है अन्य उपायों से आत्मा की उपलब्धि अशक्य है। पण्डित यानी सत् असत् विचार शील जीवों को ऐहिक भोगों से अत्यन्त वैराग्य करना चाहिये क्योंकि ऐहिक विषयभोग ही जीवों को अत्यन्त दुःख देने वाले हैं इस प्रकार के सर्व मानवोपयोगी अच्छे अर्थों को प्रणत कल्प तरु भगवान् वासुदेवने गीता के पांचवे अध्याय में कहा है।७।

श्रीकृष्णजी ने अर्जुन को योगाभ्यास की रीति प्रणाली किस स्थिति में कैसे योगसाधना करनी चाहिये तथा मोहजाल रूप संसार से अतिशय वैराग्यका स्वरूप और साधक योगियों

योगस्योत्कृष्टसिद्धिः परगतिफलिका श्रद्धया यः सयुक्तो
योगिष्वेतेषु चेड्यं भजति हरिमिति प्राह षष्ठे पदार्थान् ॥८॥
याथार्थ्यं स्वस्य चोक्तं जगति जनचयो मायया मोहमाप्त
स्तामेतां तर्तुकामैः खररिपुचरणे सुप्रपत्तिर्विधेया ।
सेवा देवान्तराणां परिमितफलदा नैव कार्या प्रपन्नै
र्ज्ञानी श्रेष्ठः समेषामितिमतमवदत् सप्तमे श्रीमुकुन्दः ॥९॥

चातुर्विध्यम् प्रतीतम् तत्र च सममतिः अधिकः उक्तः योगस्य उत्कृष्टसिद्धिः परगतिफलिका इति च उक्तः एतेषु योगेषु यः श्रद्धया इड्यम् हरिम् भजति स युक्तः इति पदार्थान् षष्ठे प्राह ॥८॥

स्वस्य याथार्थ्यम् उक्तम् जगति जनचयः मायया मोहमाप्तः इति च उक्तम् ताम् एताम् तर्तुकामैः खररिपुचरणे सुप्रपत्तिः विधेया प्रपन्नैः परिमितफलदा देवान्तराणाम् सेवा नैव कार्या समेषाम् श्रेष्ठः ज्ञानी इति मतम् श्रीमुकुन्दः सप्तमे अवदत्॥९॥

के चार प्रकार के भेद का निरूपण कर उन चार प्रकार के योगियों में भी सर्व समबुद्धिवाले योगीकी सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन कर योग की उत्कृष्ट सिद्धि मोक्ष प्रदान करने वाली है इस विषय का प्रति पादन किया गया हैं। इन योगियों में जो अनन्य निष्ठासे सर्वजन समाराधनीय प्रपन्नजन ताप पापापहारक हरि श्रीरामजी का भजन करता है वह युक्त श्रेष्ठ है इन पदार्थों को छटे अध्याय में कहा है ॥८॥

श्रीमुकुन्द भगवान् ने गीता के इस सातवें अध्याय में अपने यथार्थ रूप का वर्णन किया है, और जगत में जनसमूह भगवान् की माया से मोह प्राप्त किया हुआ है इस बात का भी प्रतिपादन किया है सर्वजन विमोहन शील इस माया के मोहकता से तरने यानी छुटकारा पाने की इच्छा वालों को मायाधिपति खरारि–सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के श्रीचरण की सर्वतोभाव से यानी कायिक वाचिक तथा मानसिक प्रपत्ति स्वीकार कर लेनी चाहिये श्रीरामजी की शरणागति के बिना माया तरी नहीं जा सकती है। श्रीरामप्रपन्न मनुष्यों को परिमित सीमित यानि अल्प काल में क्षयशील फल को देनेवाले श्रीरामजी से अतिरिक्त अन्य देवताओं की सेवा नहीं करनी चाहिये । सभी अन्यजनों के अपेक्षा ज्ञानीजन श्रेष्ठ होता है इत्यादि शास्त्र मत को भी इसी अध्याय में व्यक्त किया है ॥९॥

प्रश्नाः पार्थस्य सप्त प्रतिवचनमथो वर्णनं चान्तिमस्य
ब्रह्मानुध्यानतोऽद्धा ह्यसुगतिसमये ब्रह्मभावं सदैति।
क्षेत्रज्ञस्याप्युपास्तौ प्रकृतिविरहिणः सद्गतिः सैव शुक्ला
हेतुर्नैवागतेः सा सृतिरिति भगवानष्टमे स्पष्टमाख्यत् ।१०॥
माहात्म्यं स्वस्यदिव्यं जगति भगवतो व्याप्तिरन्तः समस्मिन्
भक्त्याराध्यः परेशः सुमहितमनसां लक्षणं कार्यमेषाम् ।

पार्थस्य सप्त प्रश्नाः अथ प्रतिवचनम् अन्तिमस्य च वर्णनम् असुगति समये ब्रह्म अनुध्यानत अद्धा सदा ब्रह्मभावम् एति हि उपास्तौ प्रकृतिविरहिणः क्षेत्रज्ञस्य अपि सद्गतिः भवति सा एव शुक्ला गति कथ्यते सा सृतिः आगतेः हेतुः नैव भवति इति स्पष्टम् भगवान् अष्टमे आख्यत् ।१०।

देवदेवः स्वस्य दिव्यम् माहात्म्यम् समस्मिन् जगति भगवत अन्तः व्याप्ति सुमहितमनसाम् परेशः भक्त्या आराध्य एषाम् कार्यम् लक्षणाम् च कर्मिणाम् स्वर्ग-

पूर्व सातवें अध्यायगत अर्थों की स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिये अर्जुन ने किम् तद् ब्रह्म आदि सात प्रश्न करने पर उनका उत्तर क्रमशः देकर नियतात्माओं के द्वारा आप कैसे जाने जाते हैं इस अन्तिम प्रश्न का विशेष वर्णन किया गया है। जीवों के प्राण प्रयाण के समय में ब्रह्म का ध्यान करने से सदा ब्रह्म भाव को प्राप्त कर जाता है। श्रीराम शरणापन्न होकर अनन्यनिष्ठा से उपासना सम्पादन करने पर प्रकृति से विरहितक्षेत्रज्ञ जीव की सद्गति निश्चयरूप से हो जाती है। यही शुक्ला—अर्चिरादि गति-मार्ग कही जाती है। यह गति आगमन यानी पुनः इस मृत्युलोक में आगमन का कारण नहीं बनती है अर्थात् अर्चिरादिमार्ग से भगवद् धाम दिव्यलोक साकेत में पहुंचे जीवों की फिर इस मृत्युलोक में आगमन नहीं होता है। इस बात को अतिस्पष्टतया भगावान् ने इस आठवें अध्याय में वर्णन किया है अर्चिरादि मार्ग के विषय में विशेष चर्चा महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी प्रणीत गीता के अर्थचन्द्रिका टीका तथा उसकी मेरी हिन्दी टीका में की गई है अतः विशेषार्थि वहीं देखें ॥१०॥

देवदेव भगवान् श्रीकृष्णजी ने अपने दिव्य माहात्म्य के स्वरूप तथा समस्त संसार में भगवान् के अन्त व्याप्ति के स्वरूप और नियमित मनवाले समुपासक महानुभावों का परेश-सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ही भक्तिभावना के साथ सर्वदा समाराधनीय हैं इस विषय को तथा ऐसे

आवृत्तिश्चात्र भूयोविलयमुपगते कर्मिणां स्वर्गलोगे
श्रीशोपास्तेः स्वरूपं ततमिति नवमे प्रादिशद् देवदेवः ॥११॥
व्याप्तं विश्वं समस्तं किल चरमचरं येन सर्वाधिपेना
त्रासीमैश्वर्यशाली विमलगुणनिधिर्यः स्वतन्त्रः परात्मा ।
यत्स्वायत्तस्वरूपस्थितिगतिरुदिता यद्विभूतिस्त्वनन्ता
सर्वात्मा सोऽयमेकः प्रभुरितिदशमे निश्चिकायादिदेवः ॥१२॥
पार्थश्चैशंदिदृक्षुर्हि वपुरतिततं चर्मचक्षुर्न योग्यं
तस्मै दत्वा तु दिव्यं स्मयभयजनकं दर्शयामास कृष्णः ।

लोके विलयमुपगते भूय अत्र आवृत्तिः श्रीशोपास्ते ततम् स्वरूपम् इति च नवमे प्रादिशत् ॥११॥

आदिदेवः येन सर्वाधिपेन अत्र किल समस्तम् चराचरम् विश्वम् व्याप्तम् यः असीमैश्वर्यशाली विमलगुणनिधिः स्वतन्त्र परमात्मा च अस्ति यत् स्वायत्तस्वरूपस्थितिगतिः उदिता यत् विभूतिः तु अनन्ता सन्ति सः अयम् सर्वात्मा प्रभुः एकः इति दशमे निश्चिकाय ॥१२॥

पार्थः अतिततम् ऐशम् वपुः दिदृक्षुः द्रष्टुम् हि चर्म चक्षुः तु न योग्यम् इति तस्मै दिव्यम् चक्षुः दत्वा कृष्णः स्मयभयजनकम् वपुः दर्शयामास देवस्य देहे

भगवदुपासकों के कार्य कलाप और लक्षण तथा कर्मवाले पुरुषों के स्वर्गादि लोकों के विनाश होजाने पर पुनः इस मर्त्यलोक में आगमन का वर्णन कर श्रीश-परमेश्वरकी उपासना के व्यापक स्वरूप को भी इस नवमें अध्याय में उपदेश किया है ॥११।

आदिदेव भगवान् श्रीकृष्णजी ने जिस सर्वाधिदेव सर्वेश्वर ब्रह्म से यह परिदृश्यमान समस्त चराचर विश्व परिनियत रूप से व्याप्त है जो अनन्त तथा असीम दिव्य ऐश्वर्य से युक्त निर्मल गुण समूहों का खजाना है और स्वतन्त्र तथा परमात्मा है। जिसके अधीन में स्वरूप स्थिति तथा गति कही गई है । तथा जिसकी विभूति अनन्त है ऐसा सर्वात्मा सर्व-समर्थ प्रभु एक ही है इस वातको इस दशवें अध्या में निश्चित किया है ।१२॥

अर्जुन ने अनन्त रूप भगवान् के अत्यन्त विस्तृत यानी विश्वरूप शरीर को देखने की इच्छा की पर उस विश्वरूप को देखने के लिए प्राकृत चर्मचक्षु योग्य यानी समर्थ नहीं हैं अतः अर्जुन को अपना दिव्यरूप के दर्शन में समर्थ दिव्य चक्षु देकर श्रीकृष्णजी ने विस्मय

मेघान् विद्युन्महीध्रान् क्षितिजलधियुतान् सूर्यचन्द्रादिदेवान्
दृष्ट्वा देवस्य देहे शरणमुपगतोऽवोचदेकादशेऽर्थान् ॥१३॥
श्रेष्ठोपायस्तु मुक्तेर्भगवति सुदृढा प्रीतिरेकैव शुद्धा
तत्राशक्तस्य कर्मण्यभिरुचिरुचिता ह्यात्मनिष्ठस्यपुंसः।
आत्मोपास्तेः प्रकारा अतिरतिमदिशत् स्वस्य भक्ते परेशः
स्वार्थानेतानवादीच्छ्रितजनरतिकृद् द्वादशे च प्रपाठे ॥१४॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपं प्रकृतिपुरुषयोर्भेद आत्मस्वरूप
ज्ञानोपायास्तथाऽत्र त्रिगुणपुरुषयो र्योगतो विश्वसृष्टिः।

मेघान् विद्युन्महीध्रान् क्षितिजलधियुतान् सूर्यचन्द्रादिदेवान् दृष्ट्वा शरणम् उपगतः एतान् अर्थान् एकादशे अवोचत् ॥१३॥

मुक्तेः श्रेष्ठोपायः तु भगवति सुदृढा शुद्धा एका प्रीतिः एव तत्र अशक्तस्य आत्मनिष्ठस्य पुंसः हि कर्मणि अभिरुचिः उचिता आत्मोपास्तेः प्रकाराः स्वस्य भक्ते अतिरतिम् च अदिशत् श्रितजनरतिकृत् परेशः एतान् स्वार्थान् द्वादशे प्रपाठे अवादीत् ॥१४॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपम् प्रकृतिपुरुषयोः भेदः आत्मस्वरूपम् तथा ज्ञानोपायाः त्रिगुण-

तथा भय को प्रदान करनेवाला अपना विश्वरूप को दिखलाया। देवके यानी भगवान् के शरीर में मेघों पृथिवी तथा समुद्रों से युक्त विद्युत तथा सूर्य और चन्द्रमा आदि देवों से व्यावृत विकरालस्वरूप को अवलोकन कर भयभीत होकर अर्जुन ने भगवान् की शरणागति स्वीकार की इत्यादि अर्थों को इस ग्यारहवें अध्याय में भगवान् ने वर्णन किया है।१३॥

सायुज्य मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय तो एकमात्र सर्वेश भगवान् में सुदृढ तथा विशुद्ध प्रेम ही है अन्य नहीं यदि इस भक्तियोग में अशक्त हो तो उस आत्मनिष्ट पुरुष की कर्म में अभिरुचि होना उचित ही हैं। आत्मोपासना के विविध प्रकार और अनन्यनिष्ठावाले अपने भक्त में अपना अतिशयित प्रेम का उपदेश अपने शरण में आये जनों पर अतिशय स्नेह करनेवाले परेश श्रीकृष्णजी ने इन अति सुन्दर अर्थों उपायों को इस बारहवें अध्याय में वर्णन किया है ॥१४॥

क्षेत्र-शरीर तथा क्षेत्रज्ञ जीवात्माओं का वास्तविकस्वरूप और प्रकृति तथा पुरुष का परस्पर भेद तथैव आत्मा का स्वरूप और ज्ञान प्राप्त करने के उपाय तथा प्रकृति और पुरुष

कर्तत्वेहेतुरेका प्रकृतिरथपुमान् भोक्तृभावे च हेतु
बन्धोच्छेदो विवेकात् त्रिसहितदशमे शौरिणोक्ता इमेऽर्थाः ॥१५॥
सूते विश्वं समस्तं प्रकृतिरनुपमा ब्रह्मस्वायत्तमूर्तिः
सत्वादीनां त्रयाणां प्रकृतिगुणतया देहिनो बन्धकत्वम् ।
लिङ्गं कार्यञ्च तेषां खलु मतिकृतिभिर्दर्शितं तत्कृतो यं
बन्धो भक्त्या प्रहेयोद्विगुणितः उदिताः सप्तकेऽर्थामुदैते ॥१६॥
संसारोऽश्वत्थवृक्षः श्रुतिविदितपदोऽव्यक्तमूलश्च तं वै
छित्वाऽसङ्गाख्यहेत्या प्रपदनमनिशं राघवेशे विधेयम् ।

पुरुषयोः योगतः विश्वसृष्टिः कर्तृत्वे एका प्रकृतिः हेतुः अथ पुमान् भोक्तृभावे च हेतुः विवेकात् बन्धोच्छेदः इति इमे अर्थाः अत्र त्रिसहितदशमे शौरिणा उक्ताः॥१५॥

ब्रह्मस्वायत्तमूर्तिः अनुपमाप्रकृतिः समस्तम् विश्वम् सूते प्रकृतिगुणतया सत्त्वादीनाम् त्रयाणाम् देहिनः बन्धकत्वम् ज्ञेयम् तेषाम् लिङ्गम् कार्यम् च मतिकृतिभिः दर्शितम् अयम् बन्धः तत्कृतभक्त्या खलु प्रहेय इति एते अर्था द्विगुणितः सप्तके मुदा उदिता ॥१६॥

अव्यक्तमूलः श्रुतिविदित पदः च संसारः अश्वत्थ वृक्षः अस्ति तम् वै अस-
के योगसे समस्त विश्व की सृष्टि और कर्तृत्व में केवल प्रकृति ही कारण है पर पुरुष-जीवात्मा कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व दोनों में कारण है विवेक प्रकृति तथा पुरुष के तत्त्व ज्ञान से वन्धन का नाश होकर मुक्ति हो जाती है इन पदार्थों को इस तेरहवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने वर्णन किया है ॥१५॥

ब्रह्म के वसवर्ति मूर्तिवाली अनुपम विचित्र सामर्थ्यवाली प्रकृति समस्त विश्व को उत्पन्न करती है इसी प्रकृति के स्वगुण होने से सत्वगुण रजोगुण तथा तमोगुण ये तीनों ही प्राणियों के वन्धन के कारण हैं। उन गुणों का लक्षण तथा कार्य को मति तथा कार्यों के द्वारा दर्शाया गया है। संसार के जीवों का यह बन्धन उन्हीं तीनों द्वारा जनित है। वह बन्धन अनन्य निष्ठावाली भगवद् भक्ति से ही छूट सकता है अन्य साधन से नहीं इत्यादि पदार्थों का वर्णन चौदहवें अध्याय में हुआ है ॥१६॥

अव्यक्त मूलवाला श्रुति से विदित बोधित पद पादजड चराचर जगत का उद्गम स्थान

बद्धान्मुक्तात् परश्चोत्तमपुरुष इति ख्यात ईशः स्वतन्त्रो
भर्त्ता चास्म्येक एवावददिति दशमे पञ्चयुक्तेर्थजातम् ॥१७॥
दैवी सम्पज्जनानां भवति सुकृतिनां मुक्तये कर्मबन्धा
न्नित्यं बन्धाय लोके कुटिलमतिजुषामासुरी सा दुरन्ता।
कार्याकार्यव्यवस्थां दिशति हिततमं शास्त्रमेतस्य त्याग
श्चासुर्या मूलयुक्तं निरयफलमिमे षोडशे वर्णितार्थाः ॥१८॥
वेद्यं शास्त्रीयकर्मत्रिगुणपरवशं यज्ञदाने तपश्च
त्रैविध्यं तस्य वेद्यं सुकृतियुतनरैः सात्विकैः सात्विकं तौ।

ङ्गाख्यहेत्या छित्वा अनिशम् राघवेशे प्रपदनम् विधेयम् बद्धात् मुक्तात् च परः उत्तमपुरुषः इति ख्यातः स्वतन्त्रः भर्ता एकः एव अस्मि इति अर्थ जातम् पञ्चमयुक्ते दशमे अवदत् ॥१७॥

लोके सुकृतिनाम् जनानाम् दैवी सम्पत् मुक्तये भवति आसुरी सम्पत् कुटिलमतिजुषाम् नित्यम् बन्धाय भवति सा च दुरन्ता भवति हिततमम् शास्त्रम् कार्याकार्यव्यवस्थाम् दिशति एतस्य त्यागः आसुर्याः मूलम् निरयफलम् च उक्तम् इति इमे अर्था षोडशे वर्णिताः ॥१८॥

वाला संसाररूपी अश्वत्थ-पीपल का वृक्ष है। उस सतत संसरणशील संसार स्वरूप वृक्ष को असंग-भगवदितर वैतृष्ण्यरूप यानी अनाशक्ति रूपी शस्त्र से काटकर अनिश सर्वदा सर्वेश्वर श्री रामचन्द्रजी की प्रपत्ति करनी चाहिये। बद्ध तथा मुक्त जीवों से पर उत्तम पुरुष इस नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध सव जीवसमूहों का स्वतन्त्र रूप से भरण पोषण करनेवाला सर्वतन्त्र स्वतन्त्र एकमात्र ईश्वर मैं हूं इस प्रकार के तत्वों को पन्द्रहवें अध्याय में वर्णन किया गया है ॥१७॥

लोक में सत्कर्मवाले जनों के लिये दैवी सम्पत्तिमुक्ति के लिये होती है तथा आसुरी सम्पत्ति कुटिल मतिवालों के लिये सर्वदा बन्धन के लिये होती हैं। वह आसुरी सम्पत्ति दुरन्त अति कष्ट से अन्तः में नाश होनेवाली होती है जीवों के लिये हिततम तीनों काल वा अवस्थाओं में अत्यन्त हित स्वरूप सर्वहित कारक शास्त्र कर्तव्य अकर्तव्य रूप व्यवस्थाओं का उपदेश करता है। ऐसे विश्वजन हित कारक सत् शास्त्र का त्याग आसुरी सम्पद् या आसुरी प्रवृत्ति का कारण तथा नरक रूप फलों का देने वाला होता है इस प्रकार का विवेचन इस सोलहवें अध्याय में हुआ हैं ।१८।

ग्राह्यं नैवासुरं तत् खलु फलरहितं लक्षणं तस्य सम्यक्
श्रीमत्कृष्णेन चोक्तं वरमिह दशमे सप्तयुक्ते प्रपाठे ॥१९॥
सन्यासस्त्यागरूपो जगति च मनुजै सत्त्वमालम्बनीयं
सीतानाथः परेशोमलगुणजलधि र्दिव्यदेहोऽवतारी ।
सर्वज्ञः सर्वशक्तः कतिचयफलदः कर्मणां संविधाता
सायुज्यं तत् प्रपत्त्या भवति तनुभृतां प्रोक्तमन्त्येऽत्र चैतत् ॥२०॥

वेद्यम् यज्ञदाने तपः च शास्त्रीय कर्म त्रिगुणपरवशम् अस्ति सुकृतियुतनरैः तस्य त्रैविध्यम् वेद्यम् सात्विकैः वै सात्विकम् ग्राह्यम् नैवासुरम् तत् खलु फलरहितम् भवति इति तस्य च वरम् लक्षणम् सम्यक् इह सप्तयुक्ते दशमे प्रपाठे श्रीमत्कृष्णेन उक्तम् ॥१९॥

सन्यासः त्यागरूपः जगति मनुजैः सत्वम् आलम्बनीयम् परेशः अमलगुण-जलधिः दिव्यदेहः अवतारी सर्वज्ञः सर्वशक्तिः सीतानाथः कृतिचयफलदः कर्मणाम् संविधाता च अस्ति अत्र तनुभृताम् तत् प्रपत्त्या सायुज्यम् भवति इति एतद् सर्वम् अन्त्ये प्रोक्तम् ॥२०॥

वेद तथा स्मृति से कर्तव्यतया विहीत यज्ञ तथा दान और तपश्चर्या रूप शास्त्रीयकर्म सत्व रज तथा तम रूप तीन गुणों के अधीन हैं। पुण्यशाली जनों को सात्विकादि फल भी तीन प्रकार के ही जानना चाहिये, अतः सात्विक फल प्राप्ति के लिये सात्विक कर्म का ही ग्रहण करना चाहिये असुरकर्म करके आसुरी फल की प्राप्ति नहीं करना चाहिये क्योंकि वह आसुरी कर्म शास्त्र विहित न होने से किसी भी प्रकार के सारे फल से रहित होता है इसलिये ऐसे असत् कर्म का लक्षण सम्यक् रूप से इस सत्रहवें अध्याय में श्रीकृष्णचन्द्रजी ने निरूपण किया हैं ॥१९॥

संन्यास कृत सर्व कर्म फल त्याग स्वरूप है। जगत में सव मनुष्यों को सत्वाश्रय कार्यों कां ही अवलम्बन करना चाहिये दूसरों का नहीं। सर्व जगत निदान भूत परमेश्वर सव निर्मल गुणों के समुद्र हैं दिव्य शरीर वाले तथा सम्पूर्ण अवतारों के अवतारी और सर्वज्ञ तथा सर्वशक्ति सम्पन्न श्रीसीतानाथजी सम्पन्न होने वाले समस्त कर्मों के यथार्थ फलों को प्रदान करने वाले तथा समस्त कर्मों को सम्पादन करने वाले हैं। अतः इस संसार में अनादि काल से प्रवहन शील शरीरधारी जीवों को सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी की प्रपत्ति अन्य सर्व कर्म त्याग

श्रीगीतार्थसुधा चैषाऽनुभवानन्दनिर्मिता ।
जन्ममृत्युविनाशाय भूयान्मननशालिनाम् ।२१

एषा अनुभवानन्दनिर्मिता श्रीगीतार्थसुधा मननशालिनाम् जन्ममृत्युविनाशाय भूयात् ॥२१॥

पूर्वक अनन्य शरणागति से ही सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती हैं जो प्रपन्नजीवों को संसार में पुनः आवागमन से रहित कर देती है। इस प्रकार के सम्पूर्ण विषयों को सर्वशास्त्रों के सार रूप से इस अन्त्य अठारहवें अध्याय में वर्णन किया गया हैं ॥२०॥

यह जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के प्रशिष्य जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यजी के शिष्य जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी से निर्मित श्रीगीतार्थसुधा गीता का सारार्थ रूप सुधा अमृत मनन करने वाले सत्पुरुषों के जन्म तथा मृत्यु के विनाश के लिये हो ॥२१॥

इति जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वर

स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीता सान्वय लघुदीपिका टीका समाप्ता

श्रीगीता जयन्ती

मार्गशीर्ष शुक्ला ११ मंगलवार २०४१




